National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 33-34

सांख्यदर्शन की प्रकृति एवं पुरूष

डॉ0 अशोक कुमार दुबे

एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

''त्रिगुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः''।[1] 'प्रकरोति जनयति इति प्रकृतिः'– अर्थात् सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली शक्ति। 'व्यक्तात् व्यक्तमुत्पद्यते' अर्थात् व्यक्त से ही व्यक्त की उत्पत्ति होती है ऐसा ही वैशेषिक और नैयायिक मानते हैं। व्यक्त से ही व्यक्त तथा उसके गुणों की उत्पत्ति होती है तो सर्वथा अप्रमाणिक अव्यक्त क्यों माना जाय? इस प्रकार न्याय– वैशेषिक के प्रश्न के उत्तर स्वरूप ईश्वरकृष्ण –*'भेदानां परिमाणात्'*– इत्यादि कारिका को प्रस्तुत करते हैं।

मूल शब्दः सांख्यदर्शन, भेदानां परिमाणात्।

प्रस्तावना

भेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य।।''[2] एवं
कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च। परिणामतः
सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्।।[3]

भेदानां परिमाणात्'

अर्थात् 'महत्' कार्यों के सीमित होने से संसार के समस्त कार्य महत् तत्त्व से लेकर भू पर्यन्त सभी कार्यों का मूल कारण अव्यक्त (प्रकृति) है। क्योंकि सृष्टि काल में कारण से कार्य अविर्भूत होता है और संहार काल में उसी में त्रिरोभूत हो जाता है। यथा–'कूर्म अङ्गवत्'। कछुए के अंग बाहर निकलने पर पृथक् प्रतीत होते हैं और प्रविष्ट होने पर अव्यक्त हो जाते है उसी प्रकार सत् ही पृथिवी इत्यादि कार्य अपने कारण–तन्मात्र से, तन्मात्र अहंकार से अहंकार महत्तत्त्व से और महत्तत्त्व–परम अव्यक्त से आविर्भूत होने से पृथक् प्रतीत होते हैं। अव्यक्त रूप कारण से साक्षात् एवं परम्परया सम्बद्ध कार्य–समूह का यही विभाग है।

अविभागाद्वैश्वरूप्यस्य

इसके विपरीत प्रलय काल में तन्मात्रों में लीन होने वाले पृथिवी अपनी अपेक्षा तन्मात्र को अहंकार में लीन होने वाले तन्मात्र अहंकार को महत्तत्व में लीन होने वाला अहंकार महत्त्तव को प्रकृति में लीन होने वाला 'महत्त्तव' प्रकृति को अव्यक्त सिद्ध करता है। प्रकृति का अन्य किसी में लय न होने से वह सभी कार्यों का मूल कारण है यही अनेक रूप कार्यों का प्रकृति में लय है। जिसे *'वैश्वरूपस्य'* पद से व्यक्त किया गया है।

''शक्तितः प्रवृत्तेश्च''

अर्थात् शक्ति से कार्य के उत्पन्न्न होने के कारण भी 'अव्यक्त' मूल कारण सिद्ध होते हैं। कारण में स्थित शक्ति उसमें कार्य के अव्यक्त रूप से भिन्न होने का कोई प्रमाण नहीं। यथा–*'तिलेषु तैलं न तु बालुकायाः'* वैसे ही महत्तत्त्वादि कार्य भी किसी शक्ति विशेष से उत्पन्न होते हैं।

''परिमाणात्''

अर्थात् महदादि कार्यों के 'परिमित' या अव्यायी (सीमित) होने के कारण इसे मूल कारण नहीं मान सकते क्योंकि महदादि का भी कारण परम व्यक्त है चूंकि परम व्यक्त का कोई कारण नहीं अतः वही अपरिच्छिन्न होने से मूल कारण है।

समन्वयात्

अर्थात् विभिन्न पदार्थों की अनुरूपता या सादृश्य। जो वस्तु जैसी होती है उसका कारण भी उसी स्वभाव वाला होता है, जैसे घट का कारण मिट्टी । इसी प्रकार 'महत्' बुद्धि आदि के सुःख, दुःख, मोह न होने से उनका कारण भी वैसा ही होना चाहिए । अव्यक्त ऐसा ही त्रिगुणात्मक' कारण है अतः इसकी सत्ता सिद्ध होती है।
अब प्रकृति की सत्ता को सिद्ध करने के लिए दी गयी अन्य कारिका में 'अव्यक्त के द्विविध सदृश और विसदृश का कार्य को स्पष्ट करते हैं–

'प्रवर्तते त्रिगुणतः

अर्थात् यह अव्यक्त तीनों गुणों के रूप में परिणत होता रहता है। प्रलय काल में सत्व, रजस् और तमस् सदृश अर्थात् अपने ही रूपों में परिणत होता है क्योंकि परिणयन ही इनका स्वभाव है।

'समुदयाच्च

(समेत्युदयः) 'सम्मिश्रितरूपेण आविर्भाव। सृष्टिकाल में यह अव्यक्त त्रिगुणों के मिश्रित रूप से भी कार्य करता है परन्तु गुणों का सम्मिश्रण उनके गुण प्रधान या अङ्गाङ्गिभाव के बिना असम्भव है। अभी तक यह स्पष्ट हो चुका कि प्रकृति के प्रथम 'प्रलयकालीन' तथा द्वितीय' सृष्टिकालीन कार्य हैं। प्रकृति के गुणों की साम्यावस्था प्रलय तथा वैसम्यावस्था सृष्टि (सत्व–रजस् में आदि) है। यह साम्यावस्था जब भङ्ग होती है तब महदहङ्.कार तन्मात्रा, पंचभूत, इन्द्रिय इत्यादि की सृष्टि होती हैं। प्रश्न उठता है कि गुण प्रलय काल में एकरूप (सत्व, सत्व–रजस् में आदि) कैसे होने लगते हैं? इसके उत्तर में कारिकाकार कहते हैं– परिणामतः सलिलवत्। अर्थात् 'जल की तरह परिणामों के द्वारा। जैसे– वर्षा का जल एक सा होने पर भी पृथ्वी के नानाविकारों को प्राप्त करके नारियल, ताड़ केले, बेल इत्यादि में मीठे, खट्टे ,नमकीन इत्यादि अनेक प्रकार का हो जाता है उसी प्रकार प्रत्येक काल में एक ही गुण का आविर्भाव होने से प्राधान्य प्राप्त उस गुण का आश्रय लेकर अप्रधान गुण अनेक परिणाम उत्पन्न करते हैं इसी को कारिकाकार ने *'प्रतिप्रति गुणाश्रयविशेषात्'* अर्थात् प्रत्येक गुण के प्रबल होने की विशेषता से अव्यक्त विविध परिणामी होता है। इस प्रकार निष्कर्षतः

हम कह सकते हैं कि प्रकृति की सत्ता अर्थात् त्रिगुणों की साम्यावस्था है।

'पुरुष'

'पुरुष' या आत्मा प्रकृति से भिन्न है। पुरुष –निष्क्रिय, अपरिणाम चेतन, अपने किए हुए कार्यो को पुरुष को पुरुष को दिखाती है अतः पुरुष 'साक्षी' है–*साक्षीचेताः केवलोनिर्गुणश्च'*/ श्वल्प से सन्तुष्ट जो साधक अव्यक्त महादादि को ही 'आत्मा' मानते है। उनके मत के खण्डन में पुरुष की सत्ता को सिद्ध करने के लिए कारिकार कहते हैं–

''संघातपरार्थत्वात् ़त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।[4]

संघातपरार्थत्वात्

पद रखने का अर्थ है–सभी संघातों का दूसरे के लिए होना। सुख, दुःख, मोहादि का संघात् अव्यक्त आदि से पृथक्, पुरुष की सत्ता है। क्योंकि सभी संघात किसी दूसरे के लिए होते हैं।अव्यक्त महत्, अहंकार इत्यादि भी संघात होने कारण दूसरे के लिए है। परन्तु, जैसे –शयन,आसन आदि संघात शरीरादि अन्य संघात के लिए है। अव्यक्त आदि से भिन्न पुरुष के लिए नहीं है। इसलिए ये संघात् पर अर्थात् अपने से भिन्न दूसरे का ही अनुमान कराते हैं असंहत पुरुष का नहीं।

त्रिगुणादिविपर्ययात्

प्रश्न उठता है कि पुरुष भी संघात हो सकता है? इसके उत्तर में कहते है कि त्रिगुणों के अभाव में संघात नहीं है इसका अभिप्राय यह है कि अव्यक्त इत्यादि संघात होने के कारण इस दूसरे को तीसरे संघात के लिए मानना पड़ेगा और भी अन्य संघात के लिए मानने पर अव्यस्थता के भय से इस 'पर' अर्थात् पुरुष, विवेकी, अपरिणामी आदि मानना ही पड़ेगा क्योंकि त्रिगुणत्व आदि धर्म संहतत्त्व से व्याप्त हैं।

अधिष्ठानात्

'त्रिगुणात्मक' सभी वस्तुओं के किसी अन्य वस्तुओं के द्वारा अधिष्ठित या प्ररित होने के कारण भी पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है क्योंकि जो कुछ भी सुख–दुःख,मोहात्मक (बुद्धि) है वह सभी किसी अन्य (पुरुष) के द्वारा प्रेरित होता देखा जाता है।

भोक्तृभावात्

त्रिगुणात्मक वस्तुओं के लिए भोक्ता अपेक्षित होने से भी पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है क्योंकि भोग्य पदार्थ प्रत्येक द्वारा अच्छे या खराब है इस प्रकार अनुभूत होते हैं। प्रश्न उठता है कि बुद्धि को भोक्ता क्यों नहीं मान लेते ? उत्तर स्वरूप कहते हैं कि बुद्धि इत्यादि सुख दुःख , मोहादि स्वरूप के होने से ये (सुखादि) द्वारा प्रसन्न या दुःखी किए जाने वाले नही हो सकते क्योंकि ऐसा होने पर तो इनके स्वरूप पर भोक्तृत्व और 'भोग्यत्व' 'इन दो विरोधी वृत्तियों का आरोप होगा अतः सुखी–दुःखी होने वाला कोई अन्य अर्थात् पुरुष ही है। अन्य आचार्यों के मत में 'भोक्तृभावात्' का अर्थ दृष्ट भाव है अर्थात् दृश्य(भोग्य)किसी दृष्टा का अनुमान होने के कारण पुरुष की सत्ता सिद्ध होती है चूँकि पुरुष असंघ (उदासीन) है अतः इन आचार्यों की दृष्टि में वह दृष्टा या साक्षी बन सकता है भोक्ता कदापि नहीं। तब कौमुदीकार कहते है कि असंग पुरुष ' वस्तुतः दृष्टा भी नही बन सकता है। बुद्धि इत्यादि से उपहित होने पर यदि उसका दर्शक सम्भव है, तो उपहित होने पर असंग आत्मा का भोक्ता बनना भी सम्भव हो जायगा।

कैवल्यार्थंप्रवृत्तेश्च

'कैवल्य ' के लिए प्रवृत्ति होने से भी पुरुष की पृथक् सत्ता सिद्ध होती है। त्रिविध दुःख की सार्वकालिक निवृत्ति बुद्धियादि के विषय में असम्भव है क्योंकि दुःख इत्यादि इनका स्वरूप ही है तो ये अपने स्वरूप से पृथक् कैसे किए जा सकते हैं अतः बुद्धि इत्यादि से भिन्न कोई तत्त्व जिसका स्वरूप दुःखादि नहीं है, उससे पृथक् किया जा सकता है। वह सुख, दुःख मोहादि से भिन्न तत्व 'पुरुष ही है। उपर्युक्त विवरण से 'पुरुष की सत्ता अव्यक्तादि से पृथक् सिद्ध होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ईश्वर कृष्ण–सांख्यकारिका
2. ईश्वर कृष्ण–सांख्यकारिका
3. ईश्वर कृष्ण–सांख्यकारिका
4. ईश्वर कृष्ण–सांख्यकारिका